शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण

डॉ. विश्वावसु गौड़
बी ए एम एस (आयुर्वेदाचार्य), एम.डी. (आयुर्वेद)
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम.जे.एफ. आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर, राजस्थान

प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
पूर्व कुलपति,
डॉ. एस. राधाकृष्णन् राजस्थान
आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

स्वास्थ्य के संरक्षण एवं रोग के निवारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले वाला आयुर्वेद शाश्वत एवं अनादि है । अति प्राचीन काल से ही सिद्धान्तों के अनुरूप व्यावहारिक प्रयोगों का निर्देश देने वाला आयुर्वेद परम्परागत रूप से व्यवस्थित रूप में हमें प्राप्त होता आ रहा है । आदिकाल से ही इसका स्थायित्व इस के सिद्धान्तों के कारण है । त्रिदोष, सप्त धातु, पञ्चमहाभूत, त्रयोदश अग्नियाँ आदि से सम्बन्धित अनेक मूलभूत सिद्धान्त न केवल प्राचीन आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान आदि प्रमाणों से ही यथार्थ रूप में सिद्ध हैं, बल्कि युगानुरूप सन्दर्भ में भी विकसित अनेक वैज्ञानिक उपकरणों और प्रयोगशालाओं के माध्यम से भी इनकी प्रामाणिकता संसिद्ध हो रही है।

आयुर्वेद के प्राथमिक उद्देश्य में स्वास्थ्यसंरक्षण प्रथमतः निर्दिष्ट है, इस क्रम में दोषों का सम स्थिति में रहना आवश्यक है । सम प्रमाण में रहते हुए दोष सम्पूर्ण शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं को यथावत् बनाए रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं । इन्हें प्राकृत स्वरूप में बनाए रखने के लिए आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य इन तीन उपस्तम्भों का व्यवस्थित परिपालन आवश्यक है । आहार के साथ ही विहार की परिगणना भी कर ली जानी चाहिए, इन सबका दोषों पर सीधा प्रभाव होता है । यद्यपि दोषों को प्राकृत और वैकृत स्वरूप प्रदान करने में अनेक कारण हैं जिनका आचार्यों ने यथोचित स्थान पर व्यवस्थित रूप से विवेचन किया है ।

दोषों को प्राकृत रखने के कारणों में से एक कारण है - दिनचर्या एवं ऋतुचर्या का परिपालन ।

दिनचर्या का व्यवस्थित रूप से पालन करने वाला व्यक्ति जब तक कोई आगन्तुक कारण का व्याघात नहीं हो जाए तब तक सामान्यतया स्वस्थ रहता है और ऐसे स्वस्थ व्यक्तियों में प्रबल आगन्तुक कारणों से आक्रान्त होने पर भी उत्पन्न होने वाले विकार शरीर को विशेष रूप से पीड़ित नहीं कर पाते हैं, क्योंकि शरीर में रोगप्रतिरोधक क्षमता के रूप में जो विकारक विघात के भाव उपस्थित रहते हैं, वे इन कारणों को निराकृत कर देते हैं । व्यक्ति की दिनचर्या

विभिन्न कारणों से सर्वदा एक समान नहीं रह पाती, इसमें समय-समय पर परिवर्तन करना पड़ता है। इन कारणों में प्रमुख कारण काल का परिवर्तन है, जो कि ऋतु के रूप में जाना जाता है । काल का विशिष्ट आकलन करते हुए आयुर्वेद के आचार्यों ने स्वस्थ व्यक्ति के लिए विशिष्ट चर्या का परिपालन करने के लिए कुछ मापदण्ड सुनिश्चित किए हैं, अतः इन मापदण्डों के अनुसार परिपालनीय विशिष्ट प्रक्रिया को ऋतुचर्या कहा जाता है । स्वास्थ्य के संरक्षण में ऋतुचर्या का परिपालन अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है ।

ऋतु के स्वरूप को आचार्य ने वैज्ञानिक दृष्टि से सुनिश्चित किया है, उस के विशेष विवरण की यहाँ अपेक्षा नहीं है, यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि काल के परिमाण के परिगणन में 12 माह का एक संवत्सर परिभाषित किया गया है। यह एक संवत्सर ऋतु के विभाग से षडङ्ग वाला है । छः ऋतुओं के रूप में इसके 6 अङ्ग हैं, इनमें प्रारंभिक तीन ऋतुएँ हैं- शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म। इन्हें आदान एवं उत्तरायण काल भी कहा जाता है । वर्षा, शरद् तथा हेमन्त ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायन स्वरूप की है, इन्हें विसर्ग काल भी कहा जाता है ।

प्रत्येक ऋतु में सोम, सूर्य और अनिल इन तीनों का पृथक-पृथक स्वरूप रहता है, जिसके आधार पर ये ऋतुएँ स्थावर एवं जङ्गम सृष्टि को प्रभावित करती हैं । आयुर्वेद के आचार्यों ने इन छः ऋतुओं को दो-दो माह में व्यवस्थापित किया है, यद्यपि यह गणना दो प्रकार से की गयी है- रसबलोत्पत्ति के अनुसार (जिसमें स्वास्थ्य के संरक्षण का क्रम किया जाता है) तथा संशोधन के अनुसार (जिसमें वमन-विरेचन आदि के द्वारा शरीर का संशोधन विधेय है) । यह द्वितीय प्रकार भी स्वास्थ्यसंरक्षण और रोगनिवारण में परमोपयोगी है ।

स्वास्थ्यसंरक्षण की दृष्टि से देखें तो मार्गशीर्ष एवं पौष हेमन्त ऋतु है, जिसे वर्तमानकालीन ईसवीय गणना के अनुसार 25 अक्टूबर से 24 दिसंम्बर तक माना जा सकता है । माघ एवं फाल्गुन यह शिशिर ऋतु है, जो प्रायः 25 दिसम्बर से 24 फरवरी तक मानी जाती है । चैत्र एवं वैशाख वसन्त है , 25 फरवरी से 24 अप्रैल तक के समय में नियत किया जाता है । ज्येष्ठ एवं आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु है, जो प्रायः 25 अप्रैल से 24 जून तक के काल में निर्धारित है । श्रावण एवं भाद्रपद वर्षा का काल है जो प्रायः 25 जून से 24 अगस्त तक परिगणनीय है । आश्विन एवं कार्तिक यह दो माह शरद् ऋतु के माने गए हैं, जो सामान्यतया 25 अगस्त से 24 अक्टूबर तक के समय के रूप में निर्धारित हैं।

यह ऋतुओं का सामान्य सङ्केत है, शास्त्रों के अनुसार यह विस्तृत रूप से वर्णन के योग्य है, जिनमें इनके स्वरूप का निर्धारण एवं वैशिष्ट्य बताया गया है । इन ऋतुओं की गणना भारतीय ज्योतिषशास्त्र के द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप की गयी है, अतः कभी-कभी इनकी कालगणना में 10 से 20 दिन का अन्तर आ जाने से ऋतु का प्रभाव भी तदनुरूप ही होता है ।

यहाँ इस लेख का प्रमुख उद्देश्य शीत ऋतु में स्वास्थ्यसंरक्षण इस विषय को केन्द्रित कर वर्णन करना है । अतः यहाँ यह अवधेय है कि हेमन्त एवं शिशिर ऋतु ये दोनों शीत ऋतु हैं । इन दोनों में लगभग एक समान ऋतुचर्या परिपालनीय है, केवल शिशिर में थोड़ा सा अन्तर करके विशेष चर्या का परिपालन निर्दिष्ट है । ऋतुचर्या के परिपालनीय स्वरूप को दो प्रकार से विभक्त किया जा सकता है- 1. सामान्य क्रम 2. विशिष्ट क्रम ।

1. सामान्य क्रम-
2. दिनचर्या-परिपालन-

शीतकाल में रात्रियाँ लम्बी होती हैं और दिन छोटे होते हैं, अतः इनका सम्यक् विभाजन कर यथोचित चर्या का परिपालन करना चाहिए । रात्रि के प्रथम प्रहर के अन्तिम काल में शयन करने वाले व्यक्ति को प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर शौच आदि से निवृत्त होकर वातघ्न तैलों से सम्पूर्ण शरीर पर अभ्यङ्ग करना चाहिए विशेष रूप से सिर पर तैल का विमर्दन करे और उसके बाद सामान्य व्यायाम करे तथा किंचित् विश्राम करने के बाद उष्ण जल से स्नान करे अथवा इस क्रम को दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है- ब्राह्म मुहूर्त में उठने के बाद शौच आदि से निवृत्त होकर शरीर बल एवं आयु के अनुरूप योग, प्राणायाम, चङ्क्रमण (घूमना) आदि यथोचित रूप से जिसको जितना अभ्यास हो उसके अनुसार किया जाना चाहिए । यह परमावश्यक है । प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनि इसका निर्देश करते आ रहे हैं, जिसे वर्तमान में भी अनेक प्रकार के अनुसन्धानों के माध्यम से प्रमाणित किया जाकर भिन्न-भिन्न प्रकार से इसके परिपालन के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

1. नस्य

प्रातःकाल अभ्यङ्ग के क्रम में अभ्यङ्ग के साथ या अभ्यङ्ग के पहले ही सामान्य नस्य किया जाना चाहिए । षड्बिन्दु तैल या अणु तैल नाक में दोनों ओर तीन-तीन बूँद डालें अथवा सरसों के तेल में अंगुली को डुबो कर उसे नाक में दोनों ओर लगावें । यह प्रतिदिन करने योग्य कार्य है, इससे प्रतिश्याय (जुकाम) का बचाव होता है साथ ही श्वास के माध्यम से होने वाले विभिन्न प्रकार के सङ्क्रमणों को रोकने में भी यह प्रभावी है । यह नस्य का केवल सामान्य व्यावहारिक स्वरूप है, विधिपूर्वक किया जाने वाला नस्यकर्म पञ्चकर्म का एक अङ्ग है, वह चिकित्सक के द्वारा ही सम्पादन करने योग्य है तथा पृथक् से विवेचन के योग्य है ।

2. अभ्यङ्गादिक्रम

इसके बाद अभ्यङ्ग, व्यायाम, उद्वर्तन एवं स्नान क्रमपूर्वक करने चाहिए । वर्तमान काल में उद्वर्तन (उबटन) का

स्थान साबुन ने ले लिया है, पर जितना श्रेष्ठ प्रभाव त्वचा पर उद्वर्तन का होता है, उतना प्रभाव साबुन का नहीं होता। इसलिए अध्ययन के बाद आवश्यक रूप से उद्वर्तन (उबटन) करना ही चाहिए। यह प्रतिदिन करणीय है, फिर भी यदि प्रतिदिन करना सम्भव न हो, तो सप्ताह में 3 दिन अवश्य करना ही चाहिए। किसी भी वातदोषनाशक आयुर्वेदीय सिद्ध तैलों से सम्पूर्ण शरीर पर अपने हाथ से ही अभ्यङ्ग करने पर सामान्य व्यायाम भी हो जाता है।

उद्वर्तन (उबटन) करने के बाद उष्णोदक से स्नान कर लेना चाहिए। स्नान के बाद ध्यान परमावश्यक है। वर्तमान काल में इस क्रम के प्रति उपेक्षाभाव बढ़ा है। अभ्यङ्ग, उद्वर्तन (उबटन) एवं व्यायाम से शरीर की त्वचा में जितनी कान्ति आती है, वह स्वाभाविक होती है तथा आभ्यन्तर स्वास्थ्य एवं बाह्य स्वास्थ्य को प्रदर्शित करने वाली होती है। ऐसी कान्ति कृत्रिम क्रीम- पाउडर इत्यादि के प्रयोग से सम्भव नहीं है।

3. समुचित आहार-प्रयोग

शीत ऋतु में हेमन्त ऋतु एवं शिशिर ऋतु दोनों की गणना हो जाती है। इस काल में सोम (चन्द्रमा) बलवान् होता है तथा सूर्य का तेज कम होने से तथा बादल यदा-कदा होने और शीत वायु के चलने से भूमि का ताप शान्त हो जाता है, अतः ये ऋतुएँ सौम्य स्वभाव की होती हैं। शीत ऋतुओं में प्राणियों की जठराग्नि प्रबल होती है, अतः उसे आहार के रूप में पौष्टिक तथा पर्याप्त मात्रायुक्त भोजन के रूप में मिलने वाला इन्धन उचित मात्रा में मिलना आवश्यक है। यदि शीतकाल में प्रवृद्ध जठराग्नि को समुचित भोजन प्राप्त नहीं होता है, तो वह शरीरस्थ धातुओं का पाचन करती है, अतः ऐसी स्थिति में धातुओं के क्षय के कारण शीतकाल में शरीरस्थ वायुदोष प्रबल होकर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति करने में समर्थ होता है। इसलिए शीतकाल में मधुर अम्ल-लवणरसप्रधान गुरु एवं स्निग्ध भोजन यथाकाल यथोचित मात्रा में करना आवश्यक है। यह एक सामान्य निर्देश है, जिसका पालन सभी के लिए करणीय है।

4. स्वास्थ्य का अनुवर्तन

यह उपर्युक्त सामान्य आयुर्वेदीय पारम्परिक क्रम है, जिसका सदियों से लोग न्यूनाधिक रूप में परिपालन करते आ रहे हैं। वर्तमान काल में इन पारम्परिक क्रियाओं का, प्रक्रियाओं का, उपक्रमों का ह्रास हुआ है, लेकिन जब भी आधुनिक अनुसन्धान के माध्यम से प्राचीन प्रक्रियाओं को नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जाता है, तो कुछ लोग इनकी ओर आकर्षित अवश्य होते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्त शाश्वत हैं, इनका नियमित रूप से निरन्तर परिपालन करने वाले व्यक्ति सदा स्वस्थ रहते हैं। भारतीय परिवेश में आयुर्वेदीय क्रम अत्यधिक अनुकूल है। आचार्य कहते हैं कि सर्वदा उसका पालन करना चाहिए, जिससे निरन्तर स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता रहे, यथा-

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्।। (च.सू. 5/13)

शरीर में निरन्तर शीर्यमाण, शरीर में कुछ न कुछ शीर्णन होता रहता है, अतः उसी के अनुरूप यदि पूर्ति करनी है तो आयुर्वेद के द्वारा निर्दिष्ट आहार-विहार के क्रम का परिपालन करना चाहिए। यथासमय नियमित रूप से अनुकूल, हितकारी, पथ्य, पौष्टिक, दीपन-पाचन स्वरूप आहार को करने वाला तथा सम्यक् अभ्यङ्गादिक्रम को करने वाला व्यक्ति स्वास्थ्यानुवर्तन में सफल होता है-

2. विशिष्ट क्रम

रसायनयोग

शीत ऋतु में विभिन्न प्रकार के पारम्परिक पौष्टिक रसायनयोगों का प्रयोग करना हितकर होता है । इसमें गोंद के लड्डू, खरेंटी के लड्डू, ग्वारपाठे के लड्डू, हरिद्रा के लड्डू, मेथी के लड्डू, अजवायन के लड्डू, सोंठ के लड्डू आदि विभिन्न प्रकार के रसायन पारम्परिक रूप से प्रचलित हैं, जिनको परिवार के बड़े-बूढ़े लोग अच्छी प्रकार से जानते हैं । अग्निबल को ध्यान में रखते हुए इनका व्यवस्थित प्रयोग करना चाहिए। यह पृथक् से विवेचनीय विषय है।

अन्य औषधीय प्रयोग

चिकित्सक के परामर्श से अनेक प्रकार के पाक अश्वगन्धापाक, शतावरीपाक, सर्पिर्गुड, कौंचपाक, सौभाग्यशुण्ठीपाक आदि अनेक प्रकार के पाक आयुर्वेदीय रस-भैषज्यकल्पना में प्रचलित हैं तथा विभिन्न शास्त्रों में विस्तार से इनका वर्णन किया गया है। च्यवनप्राश, ब्रह्मरसायन, द्राक्षावलेह आदि भी प्रसिद्ध रसायनयोग हैं, जो लोक में पर्याप्त प्रचलित हैं ।

भस्मयुक्त योग-प्रयोग

इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के स्वर्णभस्मयुक्त योग, विभिन्न प्रकार की उपयोगी लौह इत्यादि भस्मों के संयोग से निर्मित प्रभावी योग तथा शिलाजीत आदि का प्रयोग स्वास्थ्य के संरक्षण में अत्यधिक उपयोगी है, पर इन्हें चिकित्सक के परामर्श के बिना प्रयुक्त नहीं करना चाहिए ।

सामान्य औषधीय द्रव्य-प्रयोग

भारतवर्ष में परम्परागत रूप से ऋतुओं को ध्यान में रख कर अनेक प्रकार के औषधीय-प्रयोग लोकव्यवहार में

प्रचलित हैं, जो देश काल एवं परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए शरीर के संरक्षण एवं अभिवर्धन के लिए परमोपयोगी सिद्ध हुए हैं। उत्तरी भारत में सामान्यतया शीत का प्रकोप अन्य भागों की अपेक्षा अधिक होता है, अतः शीत ऋतु में अनेक प्रकार के सामान्य निरापद औषधीय-प्रयोग लोक में प्रचलित हैं। यहाँ शीत ऋतु में प्रयुक्त होने वाले उपयोगी निरापद स्वरूप के कुछ योगों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनका उपयोग कर सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का संरक्षण कर सकता है, यथा-

1. दो छोटी पीपल दूध में डालकर अच्छी तरह उबाल कर दूध में आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर या बिना मिश्री मिलाए ही उबली हुई पीपल को चबाकर खा, कर यही दूध पी लेना चाहिए। दूध की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में पृथक् पृथक् होती है, जो व्यक्ति जितना दूध अभ्यासपूर्वक पीता है, उतना ही दूध ले। यह प्रयोग सर्दियों में 10 से 20 दिन तक किया जाना चाहिए। 10 दिन का विराम देकर पुनः 10 दिन या 20 दिन किया जा सकता है। जिन लोगों को प्रतिश्याय (जुकाम), स्वरभेद, गले में खरखराहट, अधिक कफ आना आदि विकृतियाँ होती हैं तथा श्वास, कास, अग्निमान्द्य आदि से ग्रस्त होते हैं, ऐसे व्यक्तियों को यह अधिक लाभदायक है।

2. दो छुहारे दूध में डाल कर विधिपूर्वक दूध को उबालना चाहिए। उबलने के बाद छुहारों की गुठली निकाल कर छुहारे खा कर ऊपर से यह दूध पीना चाहिए। यह श्वास, कासादि विकृतियों को दूर करता है। कफदोष से सम्बन्धी विकृतियों का निवारण करता है एवं शरीर को पुष्टि प्रदान करने के साथ-साथ रोगप्रतिरोधकक्षमता भी उत्पन्न करता है।

3. अच्छी पिण्डखजूर को लेकर उसकी गुठली निकाल देनी चाहिए उसके बाद पिण्डखजूर में 1 ग्राम हल्दी डालकर गोली बनाकर उसे मुँह में रखकर चूसना चाहिए, ऐसा दिन में तीन या चार बार किया जा सकता है। जिनमें कफजन्य विकृतियाँ ज्यादा होती हैं उनके लिए यह अत्यन्त लाभदायक है, सूखी खाँसी में भी यह परमोपयोगी है।

4. अदरक के टुकड़े 5 ग्राम, कच्ची हल्दी के टुकड़े 10 ग्राम एवं एक ताजा आँवले के कटे हुए टुकड़े दिन में एक बार भोजन के साथ सर्दियों में लेना हितकर होता है। जिन लोगों को खट्टी डकार और जलन होती हो, उन्हें इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

5. एक चम्मच हरिद्राखण्ड को दूध में डाल कर दिन में दो बार लिया जा सकता है। जिनको बार बार जुकाम होता है या श्वास- खाँसी रहती है, उनके लिए यह अत्यन्त उपयोगी है। यदि इसे दूध में मिला कर बच्चों को मात्रा के अनुसार दिया जाए तो यह अत्यन्त स्वादिष्ट लगता है और लाभदायक भी है। यह लम्बे समय तक लेने पर भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता, फिर भी इसमें वैद्य का परामर्श लिया जाना आवश्यक है, क्योंकि यह औषधीय योग है।